आर्य-आक्रमण के सिद्धांत का खण्डन: एक पुरातात्विक विमर्श

डॉ. नवीन दीक्षित*

सारांश

यूरोपीय विद्वानों ने जब संस्कृत भाषा का अध्ययन आरंभ किया तो उन्होंने यूरोपीय भाषाओं के साथ इसकी समानता को आकस्मिक नहीं माना और कालक्रम में यह भाषाशास्त्रीय शोध, पुरखों की खोज की मानवशास्त्रीय शोध से जुड़ गई। इसी के फलस्वरूप भारत में आर्य–आगमन एवं आर्य–आक्रमण के सिद्धांतों का सूत्रपात हुआ। भारत की स्वतंत्रता, उसके सांस्कृतिक इतिहास और उसकी राष्ट्रीय अस्मिता के लिए इन सिद्धांतों का बहुत महत्व है। इस शोध–पत्र में भाषाशास्त्रीय, पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर इन दोनों सिद्धांतों को निर्मूल सिद्ध किया गया है। इस हेतु, शोध–पत्र में 'तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक शोध–प्रविधि' का प्रयोग किया गया है। तदानुसार, इस शोध–पत्र का उद्देश्य मुख्यतः पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर आर्य–आक्रमण के सिद्धांत का खण्डन करते हुए, भारत के सांस्कृतिक नैरन्तर्य को प्रतिपादित करके, भारत–विखण्डन को विफल करना है। वर्तमान समसामयिकी में, सिंधु घाटी की सभ्यता से सम्बद्ध, राखीगढ़ी (हरियाणा) में कंकालों के डी. एन. ए. परीक्षण की शोध–व्याख्या ने, आर्य–आगमन–आक्रमण के सिद्धांतों पर पुनर्विचार का मार्ग प्रशस्त किया है। यद्यपि यह विमर्श बहुत अंशों में राजनीति से प्रेरित होने के कारण, हिंदुत्ववादी और हिंदुत्व–विरोधी, इन दो खेमों में बँटा हुआ है। मुख्यतः सांस्कृतिक अध्ययन होने के कारण वर्तमान शोध–पत्र में राजनीति की चर्चा सांकेतिक है और इसे केवल पुरातात्विक खोजों एवं उनके निष्कर्षों तक सीमित रखा गया है। वर्तमान समसामयिकी में होने के कारण, प्राचीन भारत के इतिहास से सम्बद्ध इस शोध–पत्र की बहुत प्रासंगिकता है क्योंकि यह वर्तमान भारतीय जन–समुदाय के अस्तित्व से संबंधित है। तीन खण्डों में विभाजित इस शोध–पत्र के प्रथम खण्ड में भाषाशास्त्र एवं मानवशास्त्र के सम्मिश्रण; द्वितीय खण्ड में, पुरातात्विक खोजों की भ्रामक व्याख्या के आधार पर इन सिद्धांतों की स्थापना का विवेचन एवं तृतीय खण्ड में इन सिद्धांतों के आधार बिंदुओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द– आर्य–आक्रमण, भाषाशास्त्र, मानवशास्त्र, पुरातत्व, सांस्कृतिक इतिहास, राष्ट्रीय–अस्मिता

प्रस्तावना

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में, भारतीय संस्कृति का आकलन, पश्चिम में तुलनात्मक भाषाशास्त्र के क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों से प्रभावित हुआ था। भाषाशास्त्र के क्षेत्र में हुई इस प्रगति से 'आर्य भाषा परिवार' की संकल्पना का विकास हुआ। इस भाषा परिवार में संस्कृत, यूनानी और लैटिन भाषाएँ शामिल थीं। इस भाषा परिवार के सदस्यों के मध्य पायी गई समानता के आधार पर भाषाशास्त्रीय खोज को मानवशास्त्रीय खोजों के साथ घुला–मिला दिया गया। इन भाषागत समानताओं को आकस्मिक न मानकर, इस भाषा परिवार के एक समान पुरखों को इस समानता का कारण माना गया। इस प्रकार भाषा और नस्ल का यह घालमेल पैदा किया गया। इस समानता से भारतवासी व्यापक नृवंशशास्त्रीय परिदृश्य में आकर यूरोपवासियों के भाई तथा सभ्यता के निर्माता हो गए।[1] भारत के विशेष संदर्भ में उन विद्वानों को 'आर्य' और 'वर्ण' जैसे शब्द भी प्राप्त हो गए। 'वर्ण' को पहले 'जाति' के समरूप किया गया, फिर इसे 'नस्ल' के समान कर दिया गया। संस्कृत भाषा उच्च्य आर्य नस्ल से सम्बंधित मानी गयी। संस्कृत के अभिजात्य भाषा होने का मिथक गढ़ा गया। भारतीय एवं यूरोपीय भाषाओं को बोलने वालों के लिए 'आर्य' शब्द के विस्तार, आर्य नस्ल की धारणा को लोकप्रिय बनाने और 'आर्य–बंधुत्व' के विचार के प्रचार आदि के लिए मैक्समूलर ही मुख्यतः उत्तरदायी थे।[2] भाषाशास्त्र और नस्ल विज्ञान की इस समानान्तर शोध ने ही भारत और यूरोप को समीप लाया था। यद्यपि अठाहरवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के नृवंशशास्त्री नस्ल और शारीरिक लक्षणों जैसे नाक और माथे–सिर की रचना और आकार के मध्य सम्बंध को लेकर भिन्न दृष्टिकोण रखते थे। अठाहरवीं शताब्दी के नृवंशशास्त्री नस्ल या शारीरिक लक्षणों को स्थायी नहीं मानते थे। वे मानते थे कि सभ्यता के विकास से दैहिक पुनरूद्धार या रंग का परिवर्तन होता है। किंतु उन्नीसवीं शताब्दी के नृवंशशास्त्री की सोच का केंद्र भाषा से नस्ली विभाजन की ओर हो गया तथा नस्ल को रूढ़ और नियत रूप में देखा जाने लगा।[3] इस धारणा का खण्डन एक कठिनाई के कारण हुआ। पृथ्वी के आदिम लोगों के बारे में बढ़ते ज्ञान के साथ, विक्टोरियायुगीन मानवशास्त्र के सामने काली त्वचा के आदिम और गोरी त्वचा के सभ्य यूरोपीय लोगों के दो विपरीत लक्षणों पर आधारित मानव–विविधता के वर्गीकरण की समस्या थी। इस योजना के अंतर्गत भारतीयों को रखना समस्यात्मक था क्योंकि भाषा से तो वे यूरोपीयों से सम्बद्ध थे, जबकि नस्ल (रंग) से वह अलग दिखते थे। इस प्रकार भारत, मानवशास्त्र और भाषाशास्त्र या नस्ल विज्ञान और संस्कृतज्ञों के मध्य, मानव–समूहों के यथेष्ट विभाजन को

* सहायक प्राध्यापक, सनातन धर्म एवं भारतीय ज्ञान अध्ययनशाला, साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, अकादमिक परिसर ग्राम–बारला, जि.रायसेन (म.प्र.)

लेकर उग्र विवाद का विषय बना।[4]

अंततः इस विवाद में भाषा एवं नस्ल के मध्य का पूर्व में माना गया संबंध विच्छेद हो गया और इस सम्बंध विच्छेद ने यूरोपीयों और भारतीयों की समानता का खण्डन कर दिया। उक्त विवेचन का आधार तो भाषाशास्त्र और मानवशास्त्र का संयुक्त अध्ययन था। इसका उद्देश्य भारतीय आर्यों को यूरोपीय आर्यों की नस्ल का तथा भारतेतर सिद्ध करना था। ऋग्वेद का प्राचीनतम भाग ही इन चर्चाओं का आधार था। सिंधु घाटी की सभ्यता की खोज के साथ इन चर्चाओं में पुरातात्विक अध्ययन भी शामिल हो गया।

(2)

इन खोजों ने प्राचीन भारतीय संस्कृति के अध्ययन को दो चरणों में विभाजित कर दिया। पहला इन पुरातात्विक खोजों के पूर्व का चरण, जिसका आधार ऋग्वेद का तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक भाषाशास्त्रीय अध्ययन था। दूसरा चरण इन पुरातात्विक खोजों के बाद का था। अतएव पुरातत्व के सम्बंध में आर्य संस्कृति के मूल्यांकन के दो पड़ाव हैं। पहले चरण में आर्य आगमन एवं आर्य आक्रमण के सिद्धांतों के आधार, संस्कृत की यूरोपीय भाषाओं से समानता; ऋग्वेद की वह प्राचीन विषयवस्तु है, जिसमें ऋग्वेदीय काल के लोगों के मध्य परस्पर संघर्ष के चिन्ह; मूल आदिवासियों को रंग तथा नाक–नक्श के आधार पर अर्धसभ्य मान लिया जाना तथा वर्ण–व्यवस्था में चतुर्थ वर्ण के रूप में शूद्र वर्ण को शामिल किये जाने जैसे थे।

अतिविकसित सिंधु घाटी की सभ्यता की खोज ने अर्धसभ्य मूल आदिवासियों की धारणा पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। इससे आर्य आगमन एवं आक्रमण के सिद्धांतों के समर्थकों को इनकी पुनर्व्याख्या की आवश्यकता पड़ी। वस्तुतः अब मूल प्रश्न सिंधु घाटी की सभ्यता के मूल निवासी, इसके निर्माता, सभ्यता का उद्भव एवं अवसान काल, उनकी भाषा तथा इस सभ्यता का नैरन्तर्य आदि से सम्बद्ध ही होने चाहिए थे किंतु अंग्रेज पुरातात्विकों और विद्वानों के हाथों पड़कर ये पार्श्व में चले गए और सामने 'आ गया आर्यों के आक्रमण का अन्याय, एक महान सभ्यता का विनाश, स्त्रियों–बच्चों को भी न छोड़ने वाला क्रूर नर–संहार'![5] ऋग्वेद में दुर्ग–भंजक का विवरण मिलता है। इसकी पुष्टि हेतु अवशेषों के ठोस साक्ष्य अब उपलब्ध हो सकते थे। सिंधु घाटी के उत्खननों में दुर्ग तो मिल गए थे परंतु उनके विध्वंस के चिन्ह, किसी को नहीं मिले थे। इनकी कमी अस्थिपंजरों से पूरी की गई। तय तो करना था सभ्यता के पतन का काल किंतु इन अस्थिपंजरों से आक्रमण और नरसंहार की दंत–कथाएँ गढ़ ली गईं। सन् 1921 और 1922 में दयाराम साहनी तथा राखाल दास बनर्जी ने हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो, दो प्राचीन नगरों का पता लगाया। इन पुरातात्विक खोजों के पूर्व भी भारतीय एवं विदेशी विद्वानों में यह धारणा लोकप्रिय थी कि भारत में आर्यों का आगमन ईरान के रास्ते से आगे बढ़ते हुए हुआ था। भारत के आदिवासी आर्येतर भाषाएँ बोलते थे। आर्यों ने उनको परास्त कर दिया। पुरातात्विक खोजों से इन सिद्धांतों में नया आयाम जुड़ गया। दर्शनशास्त्र के विद्वान डॉ. देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय के अनुसार यह आयाम जोड़ने का कार्य सबसे पहले भारतीय विद्वान रामप्रसाद चंद ने 1926 में किया तथा उसे पुष्पित और पल्लवित ब्रिटिश पुरातत्वज्ञ मॉर्टिमर व्हीलर ने 1947 में किया था। रामप्रसाद चंद ने 1926 में बताया कि सिंधु घाटी की सभ्यता का विनाश आर्यों के आक्रमण के कारण हुआ था।[6] रामप्रसाद चंद के अनुसार ऋग्वेद में उल्लेखित 'पणि' इन नगरों के मूल निवासी थे। 'पुर' का अर्थ नगर एवं 'दुर्ग' का अर्थ 'किला' था। इंद्र को पुरोहा या पुरंदर अर्थात् 'नगरों का विध्वंसक' कहा गया है। लेकिन ऋग्वेद के एक मंत्र (1.58.8) में आयस (ताँबे या लोहे) के बने पुर द्वारा उपासक की रक्षा की बात कही गई है। इसका अर्थ यह है कि नगरों और दुर्गों में आदिवासी ही नहीं आर्य भी रहते थे। इन्द्र ने दिवोदास के लिए जिस शंबर नामक अनार्य या दैत्य के पुर जीते थे, वह पहाड़ पर रहता था। परंतु पहाड़ पर न तो हड़प्पा बसा हुआ था और न ही मोहेंजोदड़ो। ऋग्वेद के एक मंत्र (9.61.2) में दिवोदास के शत्रु गिनाए गए हैं, उनमें शंबर के साथ यदुओं के नेता यदु और तुर्वसों के नेता तुर्वस भी हैं।[7] इसका अभिप्राय यह है कि इन्द्र के प्रतिद्वन्द्वी आर्य–अनार्य दोनों थे। इन विद्वानों ने 'पुर' का जो अर्थ लिया है वह पूर्णतः संगत नहीं है। इसकी संगति शुष्ण नामक दैत्य के पास जो 'गतिशील पुर' ('चरिष्णवं पुरं', "a moveable Pura", 8.1.28) है, उससे नहीं हो सकती, क्योंकि किसी दुर्ग के गतिशील होने में ही आश्चर्य है, नगर की तो बात ही अलग है। रामप्रसाद चंद एवं देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय ने इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। मॉर्टिमर व्हीलर ने आयसी, शारदो आदि पुरों के उल्लेख तो चंद से लिए किंतु गतिशील पुर वाला छोड़ दिया और पुरंदर का अर्थ दुर्गध्वंसक ही किया।[8] 'चरिष्णवं पुरं', की सही व्याख्या इंद्र को पर्वतों द्वारा अवरूद्ध जल तथा बादलों में बंद जलराशि के मुक्तिदाता के संदर्भ में ही की जा सकती है। वैदिक कवियों के समक्ष पर्वत दुर्ग के समान हैं एवं बादल भी इन दुर्गों से कम नहीं हैं। पर्वत स्थिर होते हैं, परंतु यदि वे उड़ने लगें, तो ये आकाश में उड़ने वाले बादलों जैसे प्रतीत हों। इसी तरह दुर्ग भी स्थिर होते हैं, उन्हें गतिशील कहा जाए तो समझना चाहिए, आशय बादलों से है। इंद्र ने अपने अस्त्रों से शुष्ण के गतिशील दुर्ग – 'चरिष्णवं पुरं' को तोड़ा, यह दुर्ग आकाश में है। शुष्ण –सूखे के कारण खेती चौपट हो जाएगी, इसलिए बादल का दुर्ग ध्वस्त करके जल बरसाना

आवश्यक है। इंद्र का असाधारण महत्व इस बात में है कि वह पर्वतों को तोड़कर जलप्रवाहों को मुक्त करते हैं, साथ ही बादलों को विच्छिन्न करके धरती पर जल बरसाते हैं। जो विद्वान और पुरातात्विक, आर्य–आक्रमण के कारण सिंधु घाटी की सभ्यता का पतन मानते हैं, उनके आधारों और उनका खण्डन इस भाँति किया जा सकता है किंतु मॉर्शल जैसे विद्वान जो आर्य–आक्रमण को सिंधु घाटी की सभ्यता के पतन का कारण नहीं मानते थे, उनके लिए इसके अवसान–काल का निर्धारण एक समस्या थी। जो दोनों घटनाओं को समकालिक मानते हैं उनके लिए ऋग्वेद की रचना को पीछे की ओर ले जाना आवश्यक हो जाता है। सभ्यता के अवसान काल, आर्य–आक्रमण और ऋग्वेद की रचना की काल–तिथियों में परस्पर खींचातानी को प्रोफेसर कौलिन रेन्फ्रीव ने सही नहीं माना है।[9] चंद एवं व्हीलर के समान मॉर्शल के लिए भी आर्य, आक्रमणकारी थे परंतु वे दुर्गध्वंसक ही नहीं दुर्ग में निवास भी करते थे। वे पशुपालक और कुशल योद्धा थे परंतु उनका सामाजिक जीवन आदिम ग्रामसमाजों से ऊपर न उठ सका था इसलिए सिंधु घाटी की नगरीय समाज व्यवस्था को परास्त करके उसे खत्म कर देना उन्हें उचित नहीं जान पड़ा था। यही कारण है कि मॉर्शल को मानना पड़ा कि दो सहस्त्राब्दी ई.पू. जब आर्यो का इनसे सामना हुआ तो यह सभ्यता 'अपने पूर्व रूप की छाया मात्र रह गई होगी'।[10] सन् 1934 में गौर्डन चाइल्ड ने झिझकते हुए, मोहेंजोदड़ो के एच कब्रिस्तान में दफन अस्थिपंजरों को आर्यों का नरसंहार निरूपित किया था। व्हीलर ने दुर्ग के ध्वंसावशेषों एवं अस्थिपंजरों से आर्यों के द्वारा किए नरसंहार का निष्कर्ष निकाल लिया। यद्यपि अन्य स्थलों पर मिले अस्थिपंजरों के आधार पर मैकाय ने निष्कर्ष निकाला कि यह तो छापामारों का कार्य था। मैकाय के लिए छापा मारने और शहर को लूटने तथा आग लगाकर उसे नष्ट करने में भेद था।[11] उनके विचार में ये हमलावर बलूचिस्तान की पहाड़ियों से आए थे। व्हीलर ने इन कबालियों को हटाकर सारा वृत्तांत आर्य आक्रमणकारियों से जोड़ दिया। इससे स्पष्ट है कि मोहेंजोदड़ो का अवसान किसी बड़े पैमाने के विध्वंस का परिणाम न था।

चंद के निष्कर्षों एवं चाइल्ड के सुझावों ने भारत के पुरातात्विक विभाजन के विचार के लिए आधार प्रदान किया। यह विचार व्हीलर के लेखों द्वारा प्रचारित हुआ। विदित ही है कि भारत का इतिहास उपनिवेशवादी पूर्वाग्रहों के साथ लिखा जा रहा था। सन् 1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद भी अंग्रेज पुरातत्वज्ञों का भारत के इतिहास के प्रति यह भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण जारी रहा। सन् 1950 में प्रकाशित अपनी किताब, 'पाकिस्तान के पाँच हज़ार साल: एक पुरातात्विक रूपरेखा' में व्हीलर ने तीन साल पहले बने पाकिस्तान का इतिहास पाँच हजार साल प्राचीन बता दिया। पाकिस्तान, ईरान, इराक को एक विशाल भूखड, उसके निवासियों का एक धर्म और उसका एक सांस्कृतिक इतिहास बताकर उत्तर–पश्चिमी भारत को ऐतिहासिक दृष्टि से शेष भारत से अलग करने का षडयंत्र रचा गया। अपने 1947 के एक लेख में व्हीलर ने सुझाया कि 'सिंधु घाटी का–सा विकास दक्षिण–पश्चिमी ईरान तथा इराक में पहले हुआ; नगर निर्माण की परिकल्पना किसी न किसी रूप में इराक या दक्षिणी–पश्चिमी ईरान से भारत में आई'।[12] अमरीकी पुरातत्वज्ञ नार्मन ब्राउन तथा संस्कृत और द्रविड़ भाषाओं के विशेषज्ञ एमेनो ने भी सिंधु घाटी तथा बाद में पंजाब में बसे आर्यों को धर्म तथा भाषा के आधार पर शेष भारत के निवासियों की तुलना में ईरानियों के अधिक निकट माना। पाकिस्तानी पुरातत्वज्ञों ने भी इन बातों पर बल देते हुए पुरातात्विक खोजों में मिले अधिकांश प्राचीन नगरों को पाकिस्तान में मिला माना। भारतीय पुरातत्वज्ञों के परिश्रम से राजस्थान, गुजरात, कालीबंगाँ, लोथल और रंगपुर आदि के उत्खननों से मिले नगर के अवशेषों से उत्तर–पश्चिमी भारत को ऐतिहासिक आधार पर शेष भारत से अलग करने का प्रयास विफल सिद्ध हुआ। लेकिन सन् 1947 के व्हीलर के इस विषय पर लेख ने विद्वानों पर जो प्रभाव डाला वह आगे भी कायम रहा। अमरीकी पुरातत्वज्ञ डेल्स ने उस लेख के व्यापक प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखा: ''हत्याकांड के विचार ने तुरंत आग पकड़ ली, कुछ इतिहासकार, भाषाविद् और पुरातत्वज्ञ उसे अब तक मशाल की तरह उठाए चलते हैं कि उपमहाद्वीप पर वह आर्यों के आक्रमण का प्रत्यक्ष, भयावह प्रमाण है... सिंधु सभ्यता के एक समय के महान और गर्वीले नगरों पर बर्बर जनसमूहों के चढ़ आने का सजीव, नाटकीय वर्णन अब भी दोहराया जाता है''।[13]

आगे वे ए. एल. बॉशम की किताब से निम्नलिखित उद्धरण देते हैं: ''बर्बर जनों के हाथों भारतीय नगरों का पतन हुआ। उन्हें अपनी सैन्य क्षमता के कारण विजय प्राप्त हुई। यही नहीं, इस कारण भी कि उनके पास ज्यादा अच्छे हथियार थे, और वे सपाट मैदानों में तेज भागने और आतंक पैदा करने वाले जानवर (अर्थात् घोड़े) का उपयोग सीख चुके थे''।[14]

पुरातात्विक खोजों की सही व्याख्या से आक्रमण का सिद्धांत निराधार सिद्ध हो रहा था। टूटे हुए दुर्ग और अस्थिपंजरों के आधार पर आक्रमण का सिद्धांत गढ़ा गया था लेकिन पुरातात्विक खोजों के द्वारा यह प्रमाणित नहीं किया जा सकता था। डेल्स ने इस सिद्धांत का खंडन करते हुए कहा कि अनेक वर्षों की खुदाई के बाद कुल सैंतीस अस्थिपंजरों के बारे में ये निश्चय के साथ कहा जा सकता था कि ये सिंधु घाटी की सभ्यता के समय के थे। ये सब भी नगर के निचले भाग में मिले थे जो शायद लोगों के रहने का इलाका था अर्थात् इंद्र ने जिन दुर्गों का ध्वंस किया था, उनमें ये अस्थिपंजर न मिले थे। ''विनाश का कोई ऐसा स्तर नहीं है जो नगर के सबसे बाद वाले दौर का हो। बड़े पैमाने के अग्निकांड का कोई चिन्ह नहीं

था। कवच पहने, सामरिक अस्त्र–शस्त्रों के बीच पड़े हुए योद्धाओं के शव नहीं मिले थे। नगर के एकमात्र किलेबंदी वाले भाग– दुर्ग– में अंतिम रक्षात्मक संघर्ष का कोई प्रमाण नहीं था।''

ऋग्वेद में वर्णित ध्वंस के प्रसंगों से आर्य आक्रमण के मिथकों को गढ़ लेने में एक आधुनिक लेखिका, वैन्डी डोनिगर ने भी संदेह व्यक्त किया है। वे इस सिद्धांत को साम्राज्यवादी विस्तार नीति का ही अंग मानती हैं। वे रोमिला थापर के हवाले से सिंधु सभ्यता के नगरों के अचानक नष्ट किये जाने में बाहरी आक्रांताओं की भूमिका पर प्रश्नचिन्ह लगाती हैं। उनका संशय इन शब्दों में प्रकट होता है : ''वैदिक लोगों के दूसरे शत्रु थे और सिंधु सभ्यता के नष्ट होने के दूसरे कारण थे। इसके भी प्रमाण नहीं मिले हैं कि सिंधु सभ्यता के नगर अचानक नष्ट हो गए थे'' ।[15]

जनसंख्या के आधार पर भी आक्रमण का सिद्धांत खरा नहीं उतरता। बहुत थोड़े लोग यह कार्य नहीं कर सकते। बहुत बड़ी संख्या में भी ऐसा होने के कोई प्रमाण नहीं हैं। यदि यूरोपीय लोगों का आगमन हुआ भी होगा तो डोनिगर के मतानुसार वह थोड़ी संख्या में ही हुआ होगा।[16] इस प्रकार वे अंततः आर्यों के आक्रमण के सिद्धांत पर आपत्ति का उल्लेख करती हैं।

जनसंख्या के प्रश्न और आक्रमण–आगमन पर स्वामी विवेकानंद ने भी विचार प्रकट किये हैं। वे इसे बिल्कुल बेतुका सिद्धांत मानते हैं। उनके निम्न कथन द्रष्टव्य हैं : ''हमारे शास्त्रों में एक भी शब्द नहीं है, जो प्रमाण दे सके कि आर्य भारत के बाहर से किसी देश से आये। हाँ, प्राचीन भारत में अफगानिस्तान भी शामिल था, बस इतना ही। और यह सिद्धांत भी कि शूद्र, अनार्य और असंख्य थे, बिल्कुल अतार्किक और अयौक्तिक है। उन दिनों यह सम्भव ही नहीं था कि मुट्ठी भर आर्य यहाँ आकर लाखों अनार्यों पर अधिकार जमाकर बस गये हों। अजी, वे अनार्य उन्हें खा जाते, पाँच ही मिनट में उनकी चटनी बना डालते'' ।[17]

वस्तुतः डेल्स के उपर्युक्त तर्कों का व्हीलर के पास कोई उत्तर नहीं था। सन् 1966 में अपनी किताब में उन्होंने हल्के तरीके से यह स्वीकार करते हुए लिखा, ''एक विशेष संदर्भ में, जिसे दूसरे लेखकों ने बढ़ा–चढ़ा कर दिखाया था अथवा औचित्य से परे उसे हीन बना दिया था, मैंने कभी हल्के–फुल्के ढंग से इस प्रपंच के लिए इंद्र और उनके आर्यों को दोषी ठहराया था।'' लेकिन स्त्रियों, पुरूषों, बच्चों के हत्याकांड की बात हल्के–फुल्के ढंग से न की जा सकती थी। बाद में व्हीलर को स्पष्टतः इसे स्वीकार करते हुए लिखना पड़ा कि ''वर्षों पहले मैंने सुझाया था कि उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिम पर आक्रमण करने वाले आर्य विनाश के अंतिम उपादान थे। इसे सिद्ध नहीं किया जा सकता, और संभव है, वह बिल्कुल गलत हो, पर वह असंभव नहीं है।''

आक्रमण का सिद्धांत मुख्यतः सिंधु घाटी के अवसान से जुड़ा था। लेकिन सभी अंग्रेज पुरातत्वज्ञ दोनों को समकालिक या उनमें कार्य–कारण का सम्बंध नहीं मानते थे। जैसे व्हीलर के विपरीत मॉर्शल को सिंधु घाटी की सभ्यता के अवसान से अधिक उसकी निरन्तरता में रूचि थी। उनका प्रयास इसे पश्चिमी एशिया से जोड़ने का नहीं था। वे तो भारत की सभ्यता को, वैदिक संस्कृति से अलग हटकर, सिंधु सभ्यता का विकास मानते थे। धरती माता की उपासना, महायोगी शिव की पूजा, वृक्षों और पशुओं की पूजा, जल और नागों आदि की पूजा – यह सब बाद की भारतीय सभ्यता में था, उसके स्रोत सिंधु घाटी में थे। यदि यह सब बाद की सिंधु सभ्यता में था तो फिर सिंधु सभ्यता का अवसान कहाँ हुआ? वह तो बाद की सभ्यता में निरन्तर रही। मॉर्शल से भी हटकर, मैकाय को ऋग्वेद से, आर्य–अनार्य के प्रश्न से विशेष कुछ लेना–देना नहीं था। उनके मत में संस्कृति के अनेक तत्व भारत से न केवल सुमेर की ओर वरन् पश्चिमी एशिया और दक्षिणी यूरोप की ओर यात्रा करते दिखाई देते हैं। मोहेंजोदड़ो में सिरे की ओर पीछे की ओर मुड़े कंगन के एक टुकड़े की अन्य सभ्यताओं के उत्खननों से प्राप्त कंगनों से तुलना करके उन्होंने इसकी दुर्लभता का उल्लेख किया। उनके मतानुसार यह संभव है कि इसकी उत्पत्ति भारत में हुई और क्रमशः वह दूर साइप्रस तक पहुँच गया जहाँ इस तरह के कंगन संभवतः आयात किए गए थे।[18] नगर निर्माण से लेकर आभूषणों के निर्माण तक भारतीय और सुमेरी कारीगरों की दक्षता की तुलना की जाए तो मुर्कीवाले कंगन भारतीय कारीगरी के नमूने थे, इसमें संदेह न रहेगा। मैकाय मिट्टी की मूर्तियों में मोर के चित्र और मृद्भांडों में मोर के चित्रों की प्राप्ति से भी सिंधु सभ्यता की मौलिकता का निष्कर्ष निकालते हैं। मोर भारत का देशज पक्षी है। किसी देश की प्राचीन कला में वह अंकित नहीं है। मैकाय मुर्कीवाले कंगन की तरह, मयूर के अंकन को भी रोमन और यूनानी कला में भारत से आयात किया हुआ तत्व मानते हैं। घुटने पर हाथ रखे वानर की मूर्तियों और इसके सुमेर, मिस्त्र आदि प्राचीन सभ्यताओं में प्रसार के आधार पर भी मैकाय सिंधु सभ्यता की निरंतरता को प्रतिपादित करते हैं। संस्कृति की निरंतरता से मैकाय का आशय यह है कि जो सिंधु घाटी में था, वह बाद में भी था।

इस प्रकार मार्शल और मैकाय के लिए सिंधु घाटी की सभ्यता की निरंतरता महत्वपूर्ण थी। मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा के ह्रास और अवसान से वे परिचित थे पर वे जानते थे कि दो नगरों का अवसान पूरी सभ्यता का अवसान नहीं है। इसीलिए हजारों साल बाद उसके अवशेषों के बने रहने का प्रसंग वे बार–बार उठाते हैं। एक अन्य पुरातत्वज्ञ वी. जी. चाइल्ड की स्थिति व्हीलर और मैकाय के मध्य है। वे व्हीलर के समान सिंधु सभ्यता को हमलावरों के द्वारा नष्ट किए जाने के सिद्धांत को मानते थे, किंतु उनके समान वे इन हमलावरों को आर्य–हमलावर मानने से बचते रहे। साथ ही वे मॉर्शल–मैकाय की तरह हजारों साल तक वह सिंधु सभ्यता के जीवित रहने की बात भी कहते थे। भारतीय परिस्थिति में उसके स्वतंत्र रूप से जीवित रहने तथा विकसित होते रहने के बारे में चाइल्ड ने निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं – ''यह बताने के लिए काफी कहा जा चुका है कि तीसरी सहस्त्राब्दी में भारत एकदम निजी और स्वतंत्र सभ्यता के साथ मिश्र और बैबिलोनिया के मुकाबले में खड़ा था, तकनीकी विचार से यह सभ्यता उन सबके समकक्ष थी। स्पष्ट ही उसकी जड़ें भारत की धरती में बहुत गहरे पैठी हुई हैं। सिंधु सभ्यता एक विशिष्ट परिवेश से मानव जीवन का बहुत पूर्ण समायोजन है; वर्षों तक धैर्यपूर्वक किए गए प्रयत्न से ही वह निष्पन्न हो सकता था, और वह कायम रहा है, अभी भी वह विशिष्ट रूप में भारतीय है और आधुनिक भारतीय संस्कृति का आधार है। स्थापत्य और उद्योग में, इनसे भी अधिक वेशभूषा और धर्म में, मोहेंजोदड़ो ऐसे लक्षण प्रकट करता है जो ऐतिहासिक भारत की विशेषता है'' ।[19]

आक्रमण के सिद्धांत से जुड़ा दूसरा मुख्य बिंदु सिंधु लिपि का था। इसकी तारतम्यता विच्छिन्न प्रतीत हो रही थी। इस आधार पर आक्रमण के सिद्धांत को बल मिल रहा था। सिंधु लिपि को लेकर ही सिंधु–सभ्यता के बारे में चाइल्ड के विचारों में अंतर्विरोध था। वे एक साथ ही इसकी अवरूद्धता और निरंतरता को स्वीकार करते थे। 'सभ्यता नष्ट हो गई, सभ्यता बनी रही' इस प्रकार की बातों से यह विरोध प्रकट होता है। सभ्यता नष्ट हो गई थी क्योंकि अंकित मुद्राओं से जो साक्षरता परंपरा व्यंजित हुई, वह बाद में हर जगह नष्ट हो गई। मृद्भांडों और धातु की सामग्री के अवशेषों से यह पता चलता है कि कुछ तकनीकी परंपराएँ जारी रहीं। इस कारण से सभ्यता बनी रही। चाइल्ड के मत में विदेशी नवागंतुकों की रूचि के अनुरूप काम करने के लिए कुम्हार और धातुकर्मी कारीगर बचे रहे। यदि यह माना जाए तो सभ्यता की परंपरा टूट गई थी। लिपि नष्ट कैसे हो गई और तकनीकी कौशल कैसे जीवित रहा ? धार्मिक कर्मकांड जीवित रहे पर उनसे सम्बद्ध लिपि का व्यवहार पूर्णतः नष्ट हो गया। इन अनुत्तरित प्रश्नों के कारण ही चाइल्ड ने सभ्यता के बारे में मिलुजुले विचार प्रकट किए।

इन प्रश्नों के उत्तर में एक अन्य विद्वान, एस. लैंगडन ने विचार प्रकट किया कि सिंधु लिपि का व्यवहार पूरी तरह नष्ट नहीं हुआ वरन् ब्राह्मी लिपि के रूप में उसका विकास हुआ। इसी का पूर्वानुमान कनिंघम ने तब लगाया था जब सिंधु लिपि की कोई जानकारी नहीं थी। उन्होंने कहा था कि ब्राह्मी लिपि का जन्म किसी प्राचीन भारतीय चित्रलिपि से हुआ होगा।[20] इस धारणा के प्रति संशय यह था कि सिंधु लिपि और ब्राह्मी लिपि के बीच की कड़ियाँ प्राप्त नहीं थीं, लंबे अंतराल के बाद ही ब्राह्मी लिपि के व्यवहार के प्रमाण मिलते हैं।

लैंगडन के विचार से ''भारत में आर्य इंडोजर्मैनिक नस्ल के सबसे पुराने प्रतिनिधि हैं'' ।[21] प्रकारान्तर से उनके इसी विचार में भारत में आर्यों के मूल निवास का बीज विद्यमान है। इसी कारण धारणा से कुछ प्रश्न उपस्थित हुए। यदि ये सबसे पुराने प्रतिनिधि हैं तो क्या सिंधु सभ्यता के निर्माताओं से अधिक पुराने हैं? इन निर्माताओं से उनका सम्पर्क कब हुआ ? यह मोहेंजोदड़ो के लोग आर्य ही थे जो संस्कृत या उससे मिलती–जुलती कोई भाषा बोलते थे? मॉर्शल आर्यों को बाहर से आया मानते थे इसलिए वे ऐसे अनुमान लगाने लगे कि ''वैदिक जन सिंधु सभ्यता के तुरंत बाद पंजाब में आए या इन दोनों घटनाओं के मध्य अंतराल था ?'' इसके साथ ही भारतीय आर्यों की प्राचीनता के संबंध में लैंगडन और अपने मत कि 'आर्य बाहर से आए थे' – के मध्य संतुलन बैठाते हुए उन्होंने लिखा कि ''प्रोफेसर लैंगडन का उद्देश्य यह दिखाना नहीं है कि सिंधु सभ्यता के निर्माता और भारतीय आर्य एक ही थे, पर सिंधु लिपि से ब्राह्मी के उद्भव के बारे में उनका सिद्धांत उन्हें इस अनुमान की ओर ले जाता है कि दूसरी सहस्त्राब्दी के मध्य से बहुत पहले आर्य भारत में जम चुके होंगे और उन निर्माताओं के सम्पर्क में रहे होंगे, जबकि अधिकांश वैदिक विद्वानों के अनुसार उन्होंने भारत में पहली बार प्रवेश दूसरी सहस्त्राब्दी ई. पू. में किया था।'' मार्शल को सिंधु लिपि से ब्राह्मी के विकास की धारणा से कोई असहमति नहीं थी बस वे इसके समय को दूसरी सहस्त्राब्दी के पहले नहीं ले जाने देना चाहते थे। उन्होंने इसे जाहिर भी किया, ''क्या इसका कोई प्रमाण है कि उन्होंने ऐसा दूसरी सहस्त्राब्दी ई. पू. के उत्तरार्ध से पहले किया था''?[22] यदि यह सत्य है तो आर्य यहाँ के प्राचीन निवासी नहीं हैं। मार्शल इसी बात पर कायम रहना चाहते हैं। साथ ही वह सिंधु सभ्यता के नैरन्तर्य पर भी अडिग हैं। लेकिन यदि सिंधु लिपि एकाएक लुप्त हो जाती है तब यह किसी तीक्ष्ण आघात के कारण ही होना संभव है। वह तीक्ष्ण आघात आर्य–आक्रमण भी हो सकता है। बाद में बढ़े अंतराल तक वैदिक वाचिक परम्परा ही दिखाई देती है। लेकिन सभ्यता के दूसरे तत्वों जैसे तकनीकी कौशल ने निरन्तरता बनाए रखी तो क्या यह संभव नहीं कि सिंधु सभ्यता के रात्रि काल में भी सिंधु लिपि का व्यवहार होता रहा हो एवं

कालान्तर में इसी चित्र लिपि से संस्कृत भाषा एवं ब्राह्मी लिपि का विकास हुआ हो। यदि ऐसा हुआ हो तो आक्रमण जैसे कारण को मानने की आवश्यकता नहीं रहेगी। मार्शल के विचारों की दिशा इसी ओर हैः ''हो सकता है कि मोहेंजोदड़ो के अवशेष हमें तीसरी सहस्त्राब्दी के प्रथम चरण से और बाद तक न ले जाएँ, पर इससे हम यह नहीं मान सकते कि उस समय इस नगर विशेष का अंत हो गया हो या कुछ शताब्दियों बाद हड़प्पा ने उसका अनुसरण किया हो, तो उस समय सिंधु सभ्यता का पूर्ण अवसान हो गया था। इसके विपरीत मोहेंजोदड़ो से कुछ बीस–एक मील की दूरी पर झूकर के अवशेष यह सूचित करते प्रतीत होते हैं कि मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा, दोनों का लोप हो जाने के बहुत दिन बाद तक यह सभ्यता साँस लेती रही थी। निस्संदेह उसके वैभव के दिन बीत गए थे, तो भी यह मानने के लिए कोई न्यायसंगत कारण नहीं कि लेखन–कला जैसी अतिशय महत्वपूर्ण कला का व्यवहार समाप्त हो गया होगा''।[23]

मॉर्शल ने सिंधु सभ्यता की जिस निरंतरता पर जोर दिया था, यह धारणा उसी के अनुरूप थी। इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने लैंगडन के मत का समर्थन किया था कि ब्राह्मी का विकास सिंधु लिपि से हुआ। परंतु इससे अलग लैंगडन के लेखन में यह भावना अंतर्निहित थी कि मोहेंजोदड़ो के लोग संस्कृत या उससे मिलती–जुलती कोई आर्य भाषा बोलते थे। लैंगडन के निम्न विचार द्रष्टव्य हैंः ''सिंधु सभ्यता की लिपि संस्कृत पूर्व सभ्यता की लिपि है पर इसमें स्वर चिन्ह अलग से भी दिखाए गए हैं। केवल इस कारण से यह आवश्यक है कि आगे की जाँच–पड़ताल संस्कृत विद्वानों पर छोड़ दी जाए''।[24]

सिंधु लिपि और ब्राह्मी में अंतर है पर ब्राह्मी उसी का विकास है। इसी तरह सिंधु घाटी की भाषा और संस्कृत में अंतर होगा पर संस्कृत उसका विकसित रूप हो सकती है। आगे वे 'आर्यों को भारत का मूल निवासी मानने की अपनी अंतर्भावना' पर स्वयं ही, दूसरों के व्यंग्य और निषेध को निम्नलिखित रूप में व्यक्त करते हैं – ''बेशक यह संभव है कि यह इंडोजर्मैनिक भाषा न हो। आत्मविश्वास से यह दावा किया जाता है कि इतने प्राचीन (3200–2800 ई. पू.) काल में आर्य सभ्यता का भारत में अस्तित्व विशुद्ध दंत–कथा है और राष्ट्रीय परंपरा का स्वप्न है''।[25]

लैंगडन के मतानुसार सिंधु घाटी में आर्य भाषा बोली जाती थी, इस पूर्वकल्पना के आधार पर ही ऐसी जाँच–पड़ताल की जा सकती थी। यह तो केवल पूर्वकल्पना ही थी, संभव हो कि वहाँ आर्य भाषा न बोली जाती हो! अभिप्राय यह है कि वह तो इस पूर्वकल्पना के भी प्रयोग के उपरांत मिथ्या सिद्ध हो जाने हेतु तैयार थे। लेकिन फिर आत्मविश्वासपूर्वक यह क्यों कहा जाता था कि उतने प्राचीन काल में आर्य सभ्यता का भारत में अस्तित्व विशुद्ध दंत–कथा है। ऐसा आत्मविश्वास लैंगडन को नहीं था। उनका अपना दावा यह था कि ''इतिहास जितना मानता है, भारत में आर्य उससे कहीं अधिक प्राचीन हैं''।[26]

लैंगडन ने उन्नीसवीं सदी से चली आयी इस धारणा को अस्वीकार किया था कि दूसरी सहस्त्राब्दी ई. पू. के मध्य में आर्यों ने भारत में प्रवेश किया था। सिंधु सभ्यता आर्यों से पहले की अनार्य सभ्यता है, मार्शल का यह प्रचार भी उन्होंने अस्वीकार किया था। उनका आग्रह है कि सिंधु घाटी की लिपि और भाषा की जाँच–पड़ताल ब्राह्मी और संस्कृत के सहारे करनी चाहिए। मार्शल से व्हीलर तक अंग्रेजों द्वारा प्रेरित भारतीय पुरातत्व जिस दिशा में चला था, लैंगडन के विवेचन की दिशा उससे उल्टी थी।

कुछ विद्वान जैसे ब्रिजेट और रेमंड अल्चिन ये मानते हैं कि भारत में आर्यों के अनेक दल आए, हो सकता है, जिसने सिंधु सभ्यता का नाश किया, वे अवैदिक हों। उन्होंने माना कि, ''यह मानना आवश्यक होगा कि नगरों के अवसान के ही नहीं, उनकी प्रारंभिक प्रेरणा के भी कारण इंडोयूरोपियन भाषा बोलने वाले जन थे''।[27]

इस स्थापना का महत्वपूर्ण अंश इतना ही है कि आर्यों ने सिंधु सभ्यता की नींव डाली हो, यह संभावना स्वीकार करनी चाहिए। उस स्थिति में आर्य भारत के उतने ही प्राचीन निवासी हैं जितने प्राचीन सिंधु घाटी के नगर हैं। यह निष्कर्ष लैंगडन की धारणा से काफी मिलता–जुलता है।

एक अन्य विद्वान सी. रेन्फ्रीव ने आर्य–आक्रमण और सिंधु सभ्यता की आर्येतर भाषा आदि धारणाओं के कारणों पर दृष्टिपात निम्नलिखित शब्दों में किया हैः ''आमतौर पर मान लिया गया है कि इंडोयूरोपियन भाषाभाषी जन भारत में बाहर से आकर बसे थे। फिर बहुत से विद्वानों ने इससे यह भी मान लिया कि सिंधु घाटी सभ्यता की भाषा इंडोयूरोपियन से पहले की है और संभवतः द्रविड़ है। अब यदि सिंधु घाटी की सभ्यता का अंत बहुत कुछ आकस्मिक ढंग से हुआ हो, जिससे कि भारत में एक हजार साल तक के लिए नगर सभ्यता ठंडी पड़ गई, तो आश्चर्य नहीं कि इस सदी के आरंभिक चरण में विद्वानों ने 'विध्वंसकों' की बात सोची हो, जब वातावरण अप्रवासमय था (जब यूरोप के अप्रवासी दूसरों की जमीन छीनकर उनके देशों में बसते जा रहे थे)। युद्ध में कुल्हाड़ा चलाने वाले, यूरोप के प्रागैतिहासिक, लड़ाकू इंडोयूरोपियनों से लोग परिचित थे ही।

इन्हें 'विध्वंसक' मानने से अधिक स्वाभाविक और क्या था? और वे बेशक ऋग्वेद के लड़ाकू, रथारूढ़ इंडोआर्यनों से संबद्ध किए जा सकते थे। उदाहरण के लिए सर मॉर्टिमर व्हीलर ने यह धारणा पेश की थी। उन्होंने मान लिया था कि मोहेंजोदड़ो के उत्खनन में जो विभिन्न कंकाल समूह मिले हैं, वे उस नगर पर आई प्रलय में मारे गए लोगों के थे''।[28]

इतिहासकारों और पुरातत्वज्ञों का दृष्टिकोण उपनिवेशवाद से प्रभावित रहा है, यह बात रेन्फ्रीव ने बहुत स्पष्ट शब्दों में स्वीकार की है। भारत पर आर्यों के आक्रमण का सिद्धांत इसी दृष्टिकोण से प्रेरित था। इस सिद्धांत के समर्थन में ऋग्वेद का बराबर हवाला दिया जाता था, पर रेन्फ्रीव ने व्हीलर के मत का खण्डन करते हुए लिखा : ''जब व्हीलर सप्तसिंधुओं की भूमि, पंजाब पर आर्यों के आक्रमण की बात कहते हैं, तब जहाँ तक मेरी समझ में आता है, इसका कुछ भी आधार नहीं है। यदि ऋग्वेद में सप्तसिंधुओं के दर्जन भर प्रसंगों को जाँचें तो एक में भी ऐसा कुछ नहीं मिलता जिसे मैं आक्रमण का संकेत मान लूँ। सप्तसिंधुओं का देश ऋग्वेद का क्षेत्र है, घटना की रंगभूमि है। ऐसा कुछ नहीं है जिससे लगे कि आर्य यहाँ अजनबी हैं, न और कोई बात है जिससे लगे कि परकोटे वाले नगरों के वासी (दस्युओं समेत) स्वयं आर्यों की अपेक्षा कुछ अधिक आदिवासी थे''।[29]

जहाँ तक सिंधु सभ्यता के ह्रास का प्रश्न है, उनके अनुसार, ''उसका कोई सीधा–सादा कारण नहीं था। अवश्य ही आक्रमणकारी जनसमूहों पर उसकी समाप्ति के दोष मढ़ने का कोई आधार नहीं है''।[30] रेन्फ्रीव ने भारत पर आर्यों के आक्रमण सिद्धांत का खंडन किया, आर्यों को भारत का प्राचीन निवासी माना, और इस संभावना पर बल दिया कि सिंधु घाटी में आर्यभाषा बोली जाती थी। भारत के जो इतिहासकार व्हीलर आदि की मान्यताएँ दोहराते चले जाते हैं, उन्हें रेन्फ्रीव के तर्कसंगत विवेचन पर ध्यान देना चाहिए। लैंगडन से रेन्फ्रीव तक (सन् 1931 से 1987 तक) भारतीय पुरातत्व के ब्रिटिश विवेचन में एक धारा ऐसी रही है जो भारत पर आर्य–आक्रमण के सिद्धांत को अस्वीकार करती है, जो सिंधु घाटी की सभ्यता को आर्य भाषा बोलने वालों की सभ्यता मानती है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंत में इसी धारा की विजय निश्चित है क्योंकि पुरातत्व, भारत पर आर्यों के आक्रमण की कोई भी सामग्री प्रस्तुत नहीं कर सका है।

(3)

सिंधु सभ्यता के ह्रास का कारण सरस्वती नदी का जल विहीन हो जाना था। ऋग्वेद में सरस्वती जल से भरी हुई थी। बाद के वैदिक काल में वह जल विहीन थी। गॉर्डन चाइल्ड के अनुसार, प्राचीन काल में सिंध प्रदेश दोआब था, उसे पूर्व में सिंधु और पश्चिम में सरस्वती सींचती थीं।[31] सिंधु सभ्यता के निर्माण में दोनों नदियों में से प्रधान योगदान सरस्वती और उसकी सहायक नदियों का था क्योंकि सर्वाधिक सघन वितरण सिंधु नदी और उसकी सहायक नदियों के किनारे नहीं वरन् सरस्वती घाटी में था।[32] वस्तुतः सरस्वती नदी, सिंधु सभ्यता की जीवन–दायिनी नदी थी, इसीलिए कुछ विद्वान इस सभ्यता को 'सारस्वत सभ्यता' भी कहते हैं। सिंधु प्रदेश की समृद्धि दोआब की समृद्धि थी। दो नदियों में एक के सूखने से खेती चौपट हुई होगी और घरेलू व्यापार को भारी धक्का लगा होगा।

ऋग्वेद में सरस्वती जल प्रवाह से सम्पन्न है। ऋग्वेद के कवि सरस्वती के लिए कहते हैं कि 'वह नदियों के द्वारा जल से भर दी गई है (सरस्वती सिन्धुः भिः पिन्वमानाः, 6. 52. 6)। 'प्रभूत जल–राशि वाली सरस्वती' (महो अर्णः सरस्वती, 1. 3. 12) ; यहाँ भी सरस्वती की विशद धारा की ओर कवि का ध्यान है। 'वह अपनी शक्तिशाली लहरों से पर्वतशिखरों को ऐसे तोड़ती है जैसे कोई कमलनाल तोड़े (6. 61. 2) सरस्वती 'वाजिनीवती' (अन्नवती) है (6. 61. 3)। अन्न से उसके संबंध पर बल देने के लिए कवि अगली ऋचा में उसे अन्नों से अन्नवती (वाजेभिः वाजिनीवती; 6. 61. 4) कहता है। पुनः 'वाजेषु वाजिनी' कहकर कवि ने सरस्वती से धरती की उर्वरता के संबंध की ओर संकेत किया है। कवि की प्रार्थना है, ''तुझे छोड़कर दूसरे खेतों में हमें जाना न पड़े ऐसा कर।'' (6. 61. 14)। 'क्षेत्राणि' का सीधा अर्थ खेत ठीक जान पड़ता है। सरस्वती की तटवर्ती भूमि उपजाऊ है, कवि उसे छोड़कर नहीं जाना चाहता।

मैक्डनल के अनुसार इसके तटभूमि पर ही भरतों के उपासना स्थल रहे हों। भरत, ऋग्वैदिक गणों में सबसे महत्वपूर्ण थे। किंतु ऋग्वेदोत्तर काल में ''भरतों का एक गण के रूप में लोप हो जाता है''। गणरूप में भरतों का लोप प्राचीन भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। अनेक विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि ऋग्वेद के बाद वैदिक संस्कृति का केंद्र अपने स्थान से हट कर और पूर्व की ओर आ गया। भरतों का गणरूप में लोप और वैदिक संस्कृति के केंद्र का स्थान–परिवर्तन स्पष्ट ही परस्पर सम्बद्ध घटनाएँ हैं। सारस्वत क्षेत्र से हटकर वैदिक संस्कृति का केंद्र मध्यदेश में आ पहुँचा। ऋग्वेद के मूल रचना क्षेत्र के बारे में हौपकिंस और कीथ का विचार है कि वर्तमान अंबाला के दक्षिण में सरस्वती नदी के तटवर्ती प्रदेश में उसकी रचना हुई थी। ऋग्वेद में अन्य किसी भी नदी की अपेक्षा सरस्वती की महिमा अधिक है। इसमें जरा

भी संदेह नहीं कि काव्य और कवियों से घनिष्ठ संबंध होने के कारण ही ऋग्वेद की समस्त नदियों में केवल सरस्वती वाणी की देवी बनी। अपनी इच्छा से तो वैदिक कवियों ने सरस्वती की तटभूमि छोड़ी न होगी। कोई ऐसी बाध्यता थी जिस पर भरत जनों का वश न था, जिस कारण वैदिक संस्कृति का केंद्र मध्यदेश पहुँचा।

भरतजनों के सामूहिक विनाश के संकेत भारत की साहित्य परंपरा में विद्यमान हैं। जल–प्रलय में सारी मानव जाति नष्ट हो गई, केवल मनु बच रहे; प्रलय की जलराशि में वेद डूब गए, फिर विष्णु ने उनका उद्धार किया – उक्त साहित्य परंपरा में विद्यमान ये दो मुख्य संकेत हैं। ऋग्वेद में प्रलय का उल्लेख नहीं है। जलप्रलय का प्राचीनतम उल्लेख अथर्ववेद (19. 39. 8) में है। अथर्ववेद में प्रलयकथा की ओर संकेत में लिखा है, 'जहाँ से नाव नीचे उतरी, जहाँ हिमालय का शिखर है (यत्र नाव प्रमंशनं यत्र हिमवतः शिरः)। शतपथ ब्राह्मण में कथा को पौराणिक ढंग से विस्तार दिया गया है। ''तूफान में सारी प्रजा बह गई, एक मनु ही बच रहे (औद्या ह ताः सर्वाः प्रजाः निरूवाहावेह मनुरेवैकः परिशिशिषेषि), (शतपथ, 1. 8. 1, 1–6)। महाभारत ने जलप्रलय में वेद के डूबने तथा विष्णु द्वारा उनको पुनः प्राप्त करने की बात कही। शतपथ ब्राह्मण की कथा में समस्त प्रजा डूबी, कथा के उत्तरकालीन संस्करणों में वेद डूबे। प्रजा का स्थान वेदों ने ले लिया; इसका अर्थ हुआ वैदिक जन डूबे। शतपथ में मनु की रक्षा मत्स्य ने की; वह चमत्कारी मत्स्य था, पर विष्णु का अवतार नहीं था। जब प्रजा के स्थान पर वेद डूबे, तब विष्णु ने, कभी हयग्रीव बन कर, कभी मत्स्य बन कर, उनकी रक्षा की। महाभारत में पंचाल द्वारा वेदक्रम प्राप्त करने का स्पष्ट उल्लेख है। इससे यह ऐतिहासिक मान्यता पुष्ट होती है कि वैदिक संस्कृति का केंद्र सारस्वत जनपद से हटकर कुरू–पंचाल देश पहुँचा। इसी देश के पड़ोस में था मत्स्य जनपद। वैदिक संस्कृति और उसके विकास में इस जनपद का योगदान भी था। मनस्मृति के अनुसार सरस्वती और द्वषद्वती, इन देवनदियों के बीच जो देवनिर्मित देश था, उसे ब्रह्मावर्त कहते थे (2.17)। इसके बाद पवित्रता में दूसरे स्थान पर है ब्रह्मर्षिदेश। कुरू, मत्स्य, पंचाल, शूरसेन– इन चार जन समाजों की निवास भूमि है ब्रह्मार्षि देश। ब्रह्मावर्त के बाद वैदिक संस्कृति का केंद्र यहीं स्थापित हुआ, इसलिए उस भूमि का पवित्र होना स्वाभाविक था। कुरू पंचालों के पड़ोस में मत्स्य जनपद के अस्तित्व को याद करने पर विष्णु के मत्स्य रूप में वेदों के उद्धार करने का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। जलप्रलय एक प्राकृतिक घटना है। सभ्यता का यथेष्ट विकास हो जाने पर जलप्रलय होता है। जलप्रलय से सभ्यता का विकास क्रम टूट नहीं जाता, वह अन्य क्षेत्र में चालू रहता है। यही कलियुग का आविर्भाव है। ए. डी. पुसाल्कर ने इस प्रसंग में लिखा हैः ''इसमें कोई संदेह नहीं है कि 3102 ई. पू. का वर्ष भारत के परंपरागत इतिहास में किसी महत्वपूर्ण और युगांतकारी घटना का सूचक है। यदि वह मनु वैवस्वत के शासनकाल के आरंभ की सूचना देता है तो इसका अर्थ यह है कि वह उस महाजल–प्रलय का वर्ष है जिसका वृत्तांत शतपथ ब्राह्मण तथा अन्य अभिलेखों में अंकित है''।[33]

भगवान सिंह आर्य ने भी इन्हीं तथ्यों से जलप्रलय की घटना को लगभग 3000 ई. पू. का माना है।[34] इससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि अधिकांश ऋग्वेद की रचना सारस्वत क्षेत्र में 3000 ई. पू. से पहले हुई। इसके बाद सरस्वती घाटी के सांस्कृतिक केंद्र उत्तर या पश्चिम की ओर नहीं, पूर्व की ओर गए। जलप्रलय से जो भरत बचे, वे कुरू जन में घुल–मिल गए।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की मूल धारणा यह रही है कि ग्रीक, लैटिन, संस्कृत आदि भाषाओं में बहुत बड़ी समानता है, इसलिए वे एक आदि मातामही भाषा की पुत्रियाँ हैं। पुरातत्वज्ञों ने यह धारणा विरासत में पायी। इसलिए इन विद्वानों ने आर्य आक्रमणकारियों को सिंधु सभ्यता के विध्वंस का कारण माना। साथ ही इस सभ्यता को ऋग्वेद के पहले का माना। इस पूर्वाग्रह के कारण वे सरस्वती के महत्व को पहचान न सके। सरस्वती का जलमार्ग बदला, पुराना मार्ग प्रायः जलशून्य हो गया, इस उलट–फेर से सिंधु सभ्यता के ह्रास का सीधा संबंध था, यह सत्य उनकी आँखों से ओझल रहा। ऋग्वेद में जिन गणसमाजों का उल्लेख है, उन्हीं के वंशजों ने सिंधु सभ्यता का निर्माण किया, यह बात भी इन विद्वानों के लिए कल्पनातीत थी। किंतु ऋग्वेद में सरस्वती के भरी होने और सिंधु ह्रासकाल में उसके खाली होने से यही निष्कर्ष निकलता है।

सारतः कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में, भाषाशास्त्र ने 'आर्य भाषा परिवार' की संकल्पना का विकास किया। इस भाषा परिवार में संस्कृत, यूनानी और लैटिन भाषाएँ शामिल थीं। इस भाषा परिवार के सदस्यों के मध्य पायी गई समानता के आधार पर भाषाशास्त्रीय खोज को मानवशास्त्रीय खोजों के साथ घुला–मिला दिया गया। इन भाषागत समानताओं को आकस्मिक न मानकर, इस भाषा परिवार के एक समान पुरखों को इस समानता का कारण माना गया। इस प्रकार भाषा और नस्ल का यह घालमेल पैदा किया गया। इसका उद्देश्य भारतीय आर्यों को यूरोपीय आर्यों की नस्ल का तथा भारतेतर सिद्ध करना था। ऋग्वेद का प्राचीनतम भाग ही इन चर्चाओं का आधार था। अंततः इस विवाद में भाषा एवं नस्ल के मध्य का पूर्व में माना गया संबंध विच्छेद हो गया और इस सम्बंध विच्छेद ने यूरोपीयों और भारतीयों की समानता का खण्डन कर दिया। सिंधु घाटी की सभ्यता की खोज के साथ इन चर्चाओं में पुरातात्विक अध्ययन भी शामिल हो गया। वस्तुतः अब

मूल प्रश्न सिंधु घाटी की सभ्यता के मूल निवासी, इसके निर्माता, सभ्यता का उद्भव एवं अवसान काल, उनकी भाषा तथा इस सभ्यता का नैरन्तर्य आदि से सम्बद्ध ही होने चाहिए थे किंतु अंग्रेज पुरातात्विकों और विद्वानों के हाथों पड़कर ये पार्श्व में चले गए और सामने 'आ गया आर्यों के आक्रमण का अन्याय, एक महान सभ्यता का विनाश, स्त्रियों–बच्चों को भी न छोड़ने वाला क्रूर नर–संहार'! सिंधु घाटी के उत्खननों में दुर्ग तो मिल गए थे परंतु उनके विध्वंस के चिन्ह किसी को नहीं मिले थे। इनकी कमी अस्थिपंजरों से पूरी की गई। 'पुर' का अर्थ नगर एवं 'दुर्ग' का अर्थ 'किला' था। इंद्र को पुरोहा या पुरंदर अर्थात् 'नगरों का विध्वंसक' कहा गया। इंद्र को दुर्ग के विश्वंसक के रूप में चित्रित करने वाले विद्वान, गतिशील दुर्ग ('चरिष्णवं पुरं'), की कोई व्याख्या नहीं प्रस्तुत कर सके। वस्तुतः इसकी सही व्याख्या ही, इंद्र को दुर्ग –विश्वंसक माने जाने वाली धारणा का सही खंडन है। 'चरिष्णवं पुरं', की सही व्याख्या इंद्र को पर्वतों द्वारा अवरूद्ध जल तथा बादलों में बंद जलराशि के मुक्तिदाता के संदर्भ में ही समझी जा सकती है। उल्लेखनीय है कि डेल्स के प्रश्नों का उत्तर न दे पाने पर स्वयं व्हीलर ने 'विध्वंसक–इंद्र' के अपने विचार को आधारहीन स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार आर्य–आक्रमण के सिद्धांत को मानने वाले चंद और व्हीलर जैसे पुरातत्वज्ञों के विचारों का खंडन किया जा सकता है, किंतु मॉर्शल और मैकाय जैसे पुरातत्वज्ञों के लिए आर्य–आक्रमण से अधिक आर्य–आगमन एवं सिंधु घाटी की सभ्यता की निरंतरता और उसके आर्येतर सांस्कृतिक घटक आदि अधिक महत्वपूर्ण थे। वे ऋग्वेद को सिंधु सभ्यता के ह्रास के बाद की रचना मानते थे। इस धारणा का खंडन ऋग्वेद में वेगवती सरस्वती नदी के उल्लेखों में निहित है। मॉर्शल इस तथ्य को अनदेखा कर गए कि जो सरस्वती ऋग्वेद में पानी से भरी हुई है, वह उत्तर वैदिक साहित्य में जल से खाली है। इससे सिद्ध होता है कि ऋग्वेद की रचना सिंधु घाटी की सभ्यता के ह्रास के पहले हो चुकी थी। वास्तव में सिंधु सभ्यता दो प्रधान नदियों की सभ्यता थी इसलिए इसे सिंधु–सरस्वती सभ्यता कहा जाना उचित है। इसमें भी घनी आबादी सरस्वती की घाटी में थी। जब पृथ्वी के भूकंपनों के कारण सरस्वती ने अपना मार्ग बदला, तो सभ्यता का केंद्र पंजाब से खिसककर मध्यदेश हो गया। इस परिवर्तन से सभ्यता का ह्रास होता चला गया और 1750 ई.पू. जिसे आर्य–आक्रमण का समय माना जाता है, यह अपने चरम पर पहुँच गया। भारतीय साहित्य में पौराणिक रीति से इस परिवर्तन का वर्णन, जलप्रलय की घटना में मौजूद है। ऋग्वेद में जलप्रलय का वर्णन नहीं है। अथर्ववेद में इसका संकेत भर है, परंतु शतपथ ब्राह्मण तथा महाभारत आदि में मनु के जलप्रलय में जीवित बचे रहने की घटना का वर्णन उपलब्ध है। इसमें प्रलय में भीषण नरसंहार के साथ वेद के डूबने का वर्णन; वैदिक सभ्यता के ह्रास का ही संकेत है। पुसाल्कर इसका 3102 ई. पू. का समय निश्चित करते हैं। यदि यह सत्य है तो ऋग्वेद, प्रचलित आर्य–आगमन–आक्रमण के समय से लगभग 1500 वर्ष प्राचीन तो सिद्ध हो ही जाता है, क्योंकि उसमें जलप्रलय का वर्णन नहीं है। वस्तुतः वैदिक सभ्यता, सिंधु सभ्यता से प्राचीन है। दोनों का निर्माण करने वाले भारतीय आर्य ही हैं।

इस विवेचन से यह धारणा मिथ्या सिद्ध होती है कि सिंधु सभ्यता आर्येतर है और बाहर से आने वाले आर्यों ने उसका विनाश किया। यह धारणा भी ठीक नहीं है कि सिंधु सभ्यता, ऋग्वेद के पूर्व की है क्योंकि ऋग्वेद में प्रवाहमान सरस्वती नदी का कई बार उल्लेख हुआ है, जो बाद के उत्तर वैदिक साहित्य में अप्राप्य है। यदि ऋग्वेद आर्यों की रचना है और प्रचलित धारणा के अनुसार वे सिंधु सभ्यता के ह्रास के काल में भारत आए तो ऋग्वेद में सरस्वती के भरी होने के स्थान पर उसके सूखने का उल्लेख होना चाहिए था और साथ ही जलप्रलय का उल्लेख होना था –जो शतपथ ब्राह्मण में है – किंतु ऐसा नहीं है, इसलिए सिंधु सभ्यता के बाद वैदिक सभ्यता हुई, यह क्रम अयुक्त है। सिंधु सभ्यता के ह्रास का कारण आर्य–आक्रमण नहीं वरन् सरस्वती नदी का जलविहीन होना है। इस परिवर्तन से सिंधु सभ्यता का केंद्र परिवर्तित होता है, इस सभ्यता का अवसान नहीं होता है। आर्य–आक्रमण ही जब मिथ्या सिद्ध हुआ तो इसके आधार पर, बाद के बाहरी आक्रमणों को सही नहीं ठहराया जा सकता है। वैदिक सभ्यता एवं सिंधु सभ्यता का आर्य एवं आर्येतर में विभाजन, केवल भारत की सांस्कृतिक एकता एवं अविच्छिन्नता को खण्डित करने का दुष्प्रचार मात्र है। इस आलेख में प्रयुक्त प्रमाणों से, आर्य–आक्रमण के सिद्धांत के मिथ्यापन द्वारा ऐसे दुष्प्रचार निष्प्रभावी होते हैं, यही इसकी वर्तमान सार्थकता है।

संदर्भः–

1. ट्रॉटमेन, थॉमस आर.: आर्यन्स् एण्ड ब्रिटिश इण्डिया. (नई दिल्लीः विस्तार पब्लिकेशन्स्, 1997), पृ. 133
2. वही, पृ. 172.
3. वही, पृ. 182–83.
4. वही
5. शर्मा, रामविलासः पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद. (दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1994), पृ. 26.

6. चट्टोपाध्याय, डी. पी.: रिलीजन एंड सोसाइटी. (नई दिल्लीः आकार बुक्स, 2103), पृ. 82
7. वही, पृ. 79.
8. वही, पृ. 75.
9. शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 23–24.
10. मॉर्शल,जे.: मोहेंजोदड़ो एण्ड द इण्डस सिविलाइजेशन. (नई दिल्लीः एशियन एडुकेशनल सर्वविसेज़, 2004), पृ. 112
11. शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 23–24.
12. वही, पृ. 27.
13. वही, पृ. 29.
14. वही, पृ. 29.
15. डोनिगर,वैन्डीः द हिन्दूज़–एन अल्टरनेटिव हिस्ट्री. (नई दिल्लीः स्पीकिंग टाइगर पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, 2015), पृ. 91–92
16. वही पृ. 92
17. स्वामी विवेकानंदः विवेकानंद साहित्य–5. (कोलकाताः अद्वैत आश्रम, 2010), पृ. 186
18. मैकाय, ई.जी.एच.: फर्दर एक्सकेवेशन्स एट मोहेंजोदड़ो. (नई दिल्लीः मुंशी मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा. लिमि.,1998), पृ. 668
19. चाइल्ड, वी.जी.: न्यू लाइट ऑन द मोस्ट एन्शियेन्ट ईस्ट. (लंदनः रॉउटलेज एण्ड कीगन पॉल लिमि., 1958), पृ. 143–44
20. मॉर्शल, पूर्वोक्त, खण्ड–2, पृ. 426
21. वही, पृ. 432
22. वही, खण्ड–1, पृ. 112
23. वही
24. वही, खण्ड–2, पृ. 424
25. वही, पृ. 431
26. वही, पृ. 432
27. अल्चिन, बी. एवं आर. : द बर्थ ऑफ इंडियन सिवीलॉइजेशन. (लंदनः पेंगुयिन, 1968), पृ. 144.
28. रेन्फ्रीव, सी. : ऑर्किओलॉजी एण्ड लैंगवेज़. (यू.के.: कैम्ब्रीज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990), पृ. 187.
29. वही, पृ. 188.
30. वही, पृ. 188–89.
31. चाइल्ड, पूर्वोक्त, पृ. 172
32. लाल, बी. बी. एण्ड गुप्त, एस. पी. : फंटियर्स ऑफ द इंडस् सिविलाइज़ेशन. (नई दिल्लीः इंडियन ऑर्किओलॉजिकल सोसाइटी एवं आई. सी. एच. आर., 1984), पृ. 482–83.
33. मजुमदार, आर. सी. एण्ड पुसाल्कर, ए. डी. : द वैदिक एज़. (लंदनः जॉर्ज एलन एण्ड अनविन, 1952), पृ. 269–70
34. सिंह, भगवानः हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य. (नई दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2016), पृ. 232

किशोरावस्था एवं माहवारी चक्र : नैनीताल जिले की किशोरियों का एक अध्ययन

डॉ0 प्रियंका नीरज रूवाली*, सन्तोष चन्द्रा**

सारांश

किशोरावस्था लड़कियों के जीवन का वह समय होता है जिसमें उन्हें तमाम तरह के शारीरिक बदलवों से गुजरना पड़ता है। इस दौरान किशोरियां अपने शरीर में होने वाले बदलावों से अंजान होती हैं, जिस कारण से चिंता, उलझन, बेचैनी के साथ–साथ हर चीज के बारे मे जानने की उत्सुकता रहती है। किशोरियों को उनके परिवार के सदस्यों के द्वारा न तो बच्चा समझा जाता है न ही बड़ा। ऐसे में उनके लिए कोई भी लापरवाही घातक हो सकती है। किशोरावस्था के दौरान किशोरियों में माहवारी चक्र की शुरूआत होती है, जो उनके प्रजनन तंत्र के स्वास्थ्य होने का संकेत देती है तथा इसी दौरान उसे अधिक उचित देखभाल एवं परामर्श की आवश्यकता होती है। अचानक प्रजनन अंगों से रक्त आना उसे मानसिक रूप से विचलित कर सकता है। इसलिए यह अति आवश्यक है कि इस बारे मे किशोरी को पहले से ही जानकारी हो तथा साथ ही माहवारी मे अस्वच्छता से होने वाली बिमारियों व संक्रमण से उसका बचाव किया जा सके।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य माहवारी से सम्बन्धित समाज में व्याप्त भ्रान्तियों को किशोरियो के माध्यम से जानना है। प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णनात्मक शोध प्ररचना का प्रयोग किया गया है। तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक तथ्य संकलन हेतु सन्दर्भ पुस्तकें, पत्र–पत्रिकायें, समाचार पत्र एवं इंटरनेट का प्रयोग किया गया है।

मुख्य शब्द: माहवारी, माहवारी मे अस्वच्छता, किशोरावस्था, माहवारी चक्र, भ्रान्तिया

प्रस्तावना

किशोर 10 से 19 वर्ष के आयुवर्ग के युवा होते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल आबादी में करीब 20 प्रतिशत किशोर हैं (25 करोड़ 30 लाख)। किशोर–किशोरियों की कुल आबादी का 11 प्रतिशत 10 से 14 वर्ष तथा करीब 10 प्रतिशत 15 से 19 वर्ष है। किशोरावस्था लड़कियों के जीवन का वह समय होता है जिसमें उन्हें तमाम तरह के शारीरिक बदलावों से गुजरना पड़ता है। इस दौरान किशोरियां अपने शरीर में होने वाले बदलावों से अंजान होती हैं, जिस कारण से चिंता, उलझन, बेचैनी के साथ–साथ हर चीज के बारे में जानने की उत्सुकता रहती है। किशोरियों को उनके परिवार के सदस्यों के द्वारा न तो बच्चा समझा जाता है न ही बड़ा। ऐसे में उनके लिए कोई भी लापरवाही घातक हो सकती है। किशोरावस्था के दौरान किशोरियों में माहवारी चक्र की शुरूआत होती है, जो उनके प्रजनन तंत्र के स्वास्थ होने का संकेत देती है तथा इसी दौरान उसे अधिक उचित देखभाल एवं परामर्श की आवश्यकता होती है। अचानक प्रजनन अंगों से रक्त आना उसे मानसिक रूप से विचलित कर सकता है। इसलिए यह अति आवश्यक है कि इस बारे में किशोरी को पहले से ही जानकारी हो तथा साथ ही माहवारी में अस्वच्छता से होने वाली बीमारियों व संक्रमण से उसका बचाव किया जा सके।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य किशोरियों में माहवारी के प्रभावी प्रबन्धन के तरीकों को जानना है। प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णनात्मक शोध प्ररचना का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का क्षेत्र नैनीताल जिले का भीमताल ब्लॉक है। भीमताल ब्लॉक के अन्तर्गत गाँवों की कुल संख्या 108 है तथा किशोरियों की संख्या 11076 है। अध्ययन हेतु नैनीताल जिले के भीमताल ब्लॉक के तीन ग्रामों – देवीधुरा, रूसी, बल्दियाखान का चयन लौटरी पद्धति के माध्यम से किया गया है। अध्ययन के उत्तरदाता इन तीन गाँवों की किशोरियां (10–19 वर्ष) हैं। उत्तरदाताओं के चयन हेतु संगणना पद्धति का प्रयोग किया गया है। तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक तथ्य संकलन हेतु सन्दर्भ पुस्तकें, पत्र–पत्रिकायें, समाचार पत्र एवं इंटरनेट का प्रयोग किया गया है।

* सह–प्राध्यापक, डी0एस0बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल

** एम0एस0डब्लू0 चतुर्थ सेमेस्टर, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय